मार्क्सवादी आलोचना

पश्चिम में मार्क्सवादी आलोचना के आरम्भ और उत्कर्ष का काल मोटे तौर पर 1818-1883 ई. माना गया है। जिन कार्ल मार्क्स से प्रभावित होने के कारण इस आलोचना की पद्धति-विशेष को मार्क्सवादी आलोचना कहा जाता है उनके चिन्तन का मुख्य क्षेत्र अर्थ-व्यवस्था और दर्शन था, सौन्दर्यशास्त्र नहीं। पर कला और सौन्दर्यशास्त्र में मार्क्स और एंगिल्स की गहरी दिलचस्पी थी। यह बात इन विषयों पर संकलित उनकी फुटकर उक्तियों और टिप्पणियों से सहज प्रमाणित होती है। यह बात अलग है कि मार्क्स से "नयू अमेरिकन एन्साइक्लोपीडिया" में सौन्दर्यशास्त्र विषय पर लिखने का अनुरोध किया गया था जिसे उन्होंने पूरा नहीं किया।

कला और सौन्दर्यशास्त्र पर मार्क्स और एंगिल्स की फुटकर टिप्पणियों का "ऑन आर्ट एण्ड लिट्रेचर" नाम से संकलन और प्रकाशन सन् 1938 में मास्को से, 1948 में जर्मनी से और 1947 में न्यूयार्क से अंग्रेज़ी में हुआ। इनके मूल सम्पादक माइकेल लिफ़्शित्स थे।

स्टीफ़ान मोराव्स्की के अनुसार; मार्क्स और एंगिल्स के सौन्दर्यशास्त्रीय विचार न तो आकस्मिक और प्रसंगोपात अटकलबाजियाँ हैं और न वे पूर्ण विकसित सिद्धान्त का ही रूप ले सके थे।

मार्क्स ने कला की ऐतिहासिक व्याख्या के साथ उसकी सौन्दर्यशास्त्रीय व्याख्या भी की है। साहित्य और कला की उत्पत्ति के संबंध में मार्क्स के विचारों का आधार अर्थशास्त्र की समीक्षा की भूमिका (इन्ट्रोडक्शन टू द क्रिटीक ऑफ़ पोलिटिकल इकॉनमी) के प्रसिद्ध प्राक्कथन का यह उद्धरण है : "भौतिक जीवन संबंधी उत्पादनों की रीति ही सामान्यतः जीवन की सामाजिक, राजनीतिक और बौद्धिक प्रक्रियाओं का निर्णय करती है। मनुष्य की चेतना उसके अस्तित्व का निर्णय नहीं करती। उल्टे उसका सामाजिक अस्तित्व-बोध ही उसकी चेतना का निर्णय करता है।"

साहित्य को मार्क्स उत्पादन और विनिमय के आर्थिक संबंधों का परिणाम

Scanned by CamScanner

मानते थे। अतः उनका यह मानना स्वाभाविक था कि आर्थिक बुनियाद के बदल जाने से सारे का सारा विशाल प्रसाद भी बहुत जल्दी बदलने लगता है।

"ऐसे परिवर्तनों पर विचार करते समय उत्पादन की आर्थिक हालतों के भौतिक परिवर्तन और दूसरी ओर विधिक, राजनीतिक, धार्मिक, सौन्दर्यबोधात्मक या दार्शनिक–संक्षेप में विचारधारा संबंधी रूपों के अन्तर को अलग अलग करके समझना चाहिये। इन रूपों में मनुष्य संघर्ष के प्रति सचेत होता है और उससे निबटता है।"

इसी बात को अन्यत्र और स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा है : "राजनीतिक, धार्मिक, न्यायिक, दार्शनिक, साहित्यिक, कलात्मक आदि विकास आर्थिक विकास पर आधारित होते हैं, पर वे एक दूसरे पर भी और आर्थिक आधार पर भी अपनी क्रिया-प्रतिक्रिया करते हैं। साहित्यकार की चेतना समाज-सापेक्ष होती है। वह अपने चारों ओर के जगत के प्रभाव से बचने का प्रयास करे तब भी उससे मुक्त नहीं रह सकता। उसकी कल्पनाएँ भी इसी से नियंत्रित होती हैं।"

इन उद्धरणों में कला के सामाजिक आधार की बात करने के साथ ही कला की सापेक्ष स्वायत्तता की ओर भी संकेत किया गया है। कला की सापेक्ष स्वायत्तता के संबंध में उनका कहना था कि पशु केवल अपनी जाति के माप और ज़रूरतों के अनुसार उत्पादन करते हैं जबकि मनुष्य सभी जातियों के माप के अनुसार और हर जगह वस्तु के अन्तर्भूत माप के अनुसार निर्माण कर सकता है। अतः मनुष्य सौन्दर्य के नियमों के अनुसार भी सृजन करता है।

इस कथन से स्पष्ट है कि सौन्दर्य के निजी नियम होते हैं जो आर्थिक नियमों पर निर्धारित नहीं होते।

कला-सृजन को सीधे-सीधे समाज के भौतिक उत्पादन के साथ कार्य-कारण संबंध से जोड़ने में मार्क्स के सामने व्यावहारिक कठिनाई थी। प्राचीन ग्रीक साहित्य चुनौती के रूप में उपस्थित था। तत्कालीन ग्रीक समाज में भौतिक-उत्पादन और आर्थिक-स्थिति के संदर्भ से वहाँ के कलात्मक उत्कर्ष की व्याख्या नहीं की जा सकती थी। सामाजिक विकास और कला के विकास के बीच इस असंगति को लक्ष्य करके ही शायद मार्क्स को कहना पड़ा कि भौतिक उत्पादन और कला के विकास के बीच असमान संबंध है। कला के उच्चतम विकास के कुछ युगों का समाज के साधारण विकास के साथ कोई सीधा संबंध नहीं होता जैसे ग्रीक कला, ग्रीक ट्रेजेडी और ग्रीक महाकाव्यों की श्रेष्ठता को देखते हुए तत्कालीन ग्रीक समाज अत्यन्त अविकसित मालूम होता है।

मार्क्स के अनुसार कला का आस्वाद युग-निरपेक्ष होता है। कला युगों की सीमा का अतिक्रमण करती है। उदाहरण के लिए प्राचीन ग्रीक कला हमारे लिए आज भी सौन्दर्यानुभूति का स्रोत है। इस अर्थ में शाश्वतता का गुण कलाकृतियों

Scanned by CamScanner

में सहज अन्तर्भूत होता है।

मार्क्स और एंगिल्स ने कला की सोद्देश्यता पर बराबर बल दिया। उनका कहना था कि वर्ग-संघर्ष का चित्रण करके जनमानस को संघर्ष के लिए तैयार करना कला का लक्ष्य होना चाहिए। ऐसा करते हुए कला को स्पष्ट रूप से शोषित वर्ग का पक्ष लेना चाहिए। किन्तु वे साहित्य को प्रोपेगेन्डा नहीं मानते। वे कला में प्रत्यक्ष नहीं परोक्ष और सांकेतिक सोद्देश्यता के समर्थक और प्रशंसक थे।

यथार्थवाद और मार्क्सवादी आलोचना के संबंध और साहित्य में यथार्थ-चित्रण के विषय में मार्क्सवादी दृष्टिकोण की समझ के लिए एंगिल्स का यह कथन उल्लेखनीय है : "मैं इस बात के लिए आपको दोष नहीं दे रहा कि आपने विशुद्ध समाजवादी उपन्यास नहीं लिखा। मेरा मतलब यह बिल्कुल नहीं है। लेखक के ये विचार जितने ही अप्रकट रहें, उतना ही कलाकृति के लिए अच्छा होगा। मैं जिस यथार्थवाद की बात कर रहा हूँ वह लेखक के विचारों के बावजूद भी कृति में आ सकता है। उदाहरण के लिए बाल्ज़ाक, जो उस वर्ग के विरुद्ध जाने को विवश हुआ जिसके साथ उसकी सहानुभूति और राजनीतिक पूर्वाग्रह बंधे हुए थे। इसे मैं यथार्थवाद की बड़ी भारी विजय मानता हूँ।"

एंगिल्स के इस मत का ऐतिहासिक संदर्भ यह था कि मार्क्स और एंगिल्स के युग में बाल्ज़ाक और ज़ोला आदि प्रकृतवादी लेखकों को हीन दृष्टि से देखा जाता था। मार्क्स और एंगिल्स ने मान्यता का मानदण्ड ही बदल दिया। इसका कारण यह था कि समाज के यथातथ्य चित्रण के कारण, इन कृतियों के माध्यम से समाज में व्याप्त वर्ग-संघर्ष और शोषण-प्रक्रिया आदि की स्थिति स्पष्ट हो जाती है।

मार्क्सवादी चिन्तकों ने वस्तुवादी यथार्थ-चित्रण को तो महत्त्व दिया ही था, इसके अलावा रचनाओं में वे व्यक्ति चरित्रों के स्थान पर वर्गगत चरित्रों के समावेश पर और विचार की अपेक्षा यथार्थ के चित्रण पर बल देते थे। इसीलिये उनकी दृष्टि में शिलर की अपेक्षा शेक्सपियर अधिक महत्त्वपूर्ण और समर्थ रचनाकार थे।

साहित्य के प्रति मार्क्सवादी दृष्टिकोण मूलतः लोकमंगलवादी था। इस दृष्टि के अनुसार जब तक समाज में व्यक्तिगत सम्पत्ति है, हम सच्चे मानवतावादी नहीं बन सकते। सच्ची कला का जन्म वर्गहीन समाज में ही सम्भव है। वर्ग-विभाजित समाज की कला बुर्जुआ कला ही हो सकती है।

साहित्य की विषय-वस्तु की प्रकृति और मूलवर्ती दृष्टिकोण पर विचार केन्द्रित करने का तात्पर्य यह नहीं है कि मार्क्सवादी आलोचना में शैली पर ध्यान नहीं दिया गया हो। मार्क्स ने भाषा-शैली पर विचार करते हुए कहा कि शैली अभिव्यक्ति की शक्ति होती है।

राजनीतिक लोगों में रूसी क्रान्ति के जनक लेनिन और चीन के माओ-त्स-युंग

Scanned by CamScanner

को मार्क्सवादी विचार-पद्धति की परम्परा को आगे बढ़ाने का श्रेय दिया जा सकता है।

विचारकों में इस परम्परा को सुसंगत रूप से विकसित करने की दिशा में रूसी चिन्तक प्लेखानोव की कृति "कला और सामाजिक जीवन" (1912) का उल्लेखनीय महत्त्व है। प्लेखानोव के अतिरिक्त जिन विचारकों और रचनाओं को मार्क्सवादी आलोचना को विकसित करने का श्रेय दिया जाता है उनमें क्रिस्टोफ़र कॉडवेल (इंग्लैंड 1907-1937) की "इल्यूज़न एण्ड रिएलिटी" और "स्टडीज़ इन डाइंग कल्चर", राल्फ़ फ़ॉक्स (1900-1937) की "नॉवल एण्ड द पीपल" और हंगरी के जॉर्ज लूकाच (1885-1971) की अनेक रचनाओं का उल्लेख किया जाता है। वस्तुतः लूकाच मार्क्सवादी आलोचना पद्धति के सबसे समर्थ सौन्दर्यशास्त्री और साहित्यशास्त्री हैं।

लेनिन ने मार्क्सवाद को राजनीति में व्यावहारिक रूप दिया किन्तु साहित्य पर उन्होंने अलग से विचार किया जो अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। लेनिन का कहना था कि विचार कार्य-व्यवस्था पर आधारित होने पर भी अपने जन्म के उपरान्त निजी स्वतन्त्र मार्ग का विकास कर लेते हैं। अतः साहित्य की परख सीधे अर्थ-संबंधों की दृष्टि से नहीं हो सकती।

इसके बावजूद उन्होंने कम्युनिस्ट पार्टी से साहित्य का सीधा संबंध स्थापित करते हुए स्पष्ट घोषणा की कि साहित्य, पार्टी के सिद्धान्तों के प्रचार का माध्यम होता है, इसलिए साहित्य का सृजन पार्टी के सामाजिक-आर्थिक कार्यक्रम के अनुसार होना चाहिये। साहित्य का प्रमुख दायित्व उनके अनुसार सर्वहारा के हितों की रक्षा करना है।

प्लेखानोव ने इतने स्थूल रूप में सीधे-सीधे पार्टी के सिद्धांतों से साहित्य के संबंध पर बल भले ही न दिया हो किन्तु साहित्य में व्यक्तिवाद को सर्वथा अमान्य ठहराया। कला के सामाजिक अस्तित्व की घोषणा करते हुए उन्होंने कहा कि कलाकार की अनुभूतियाँ चारों ओर के वातावरण से निर्मित होती हैं। परिवेश का यह कलाकार-द्रष्ट रूप ही दूसरों के लिए कलात्मक रूप में अभिव्यक्त होता है।

प्लेखानोव ने रहस्य-भावना को हेय दृष्टि से देखते हुए कलाओं में उसका निषेध किया। उनका कहना था कि युग की विचारधारा समाज से प्रभावित और परिवर्तित होती है। इसलिए साहित्य को सामाजिक स्थितियों में होने वाले परिवर्तन को समझे बिना नहीं समझा जा सकता।

साहित्य को राजनीति के अधीन मानकर राजनीति को प्राथमिकता देने वाले मार्क्सवादियों में माओत्सुंग का स्वर सबसे प्रबल था। उनका मानना था कि साहित्य की रचना श्रमिकों, किसानों, सिपाहियों और देहाती बुर्जुआ को ध्यान में रखकर

Scanned by CamScanner

की जानी चाहिए। उसकी सार्थकता समाज के इसी वर्ग से जुड़ने में है।

जैसा हम पहले कह आए हैं, मार्क्सवादी साहित्यशास्त्रियों में कॉडवेल प्रमुख हैं। उनकी मुख्य विशेषता इस बात में है कि उन्होंने साहित्य पर पार्टी और राजनीति के दृष्टिकोण से विचार न कर उस पर साहित्य के रूप में ही विचार किया।

कॉडवेल का कहना था कि यद्यपि कविता की प्रेरणा व्यक्ति, समाज और यथार्थ से प्राप्त की जाती है किन्तु वह स्वप्न के समान अबौद्धिक (इर्रेशनल) होती है। उनके अनुसार कविता और स्वप्न में प्रमुख भेद यही है कि कविता सामाजिक अनुभूतियों से सम्पन्न होती है। किन्तु कविता का निजी संसार होता है और उसे पढ़ते समय हम इसी संसार में लीन होते हैं।

कॉडवेल के अनुसार कविता की प्रकृति रागात्मक होती है। उसका उद्गम उस द्वन्द्व से होता है जो निरंतर व्यक्ति और उसके परिवेश के बीच होता है। इस संघर्ष से पैदा होने वाले योजनाबद्ध उत्पादन को ही वे सत्य की संज्ञा देते हैं। इस प्रक्रिया में व्यक्ति का समाजीकरण होता है। व्यक्ति से कॉडवेल का तात्पर्य, मूल प्रवृत्तियों से युक्त व्यक्ति (जीनोटाइप) से है।

कॉडवेल ने अमूर्तता और प्रतीकात्मकता पर प्रहार करते हुए स्थापना की कि कविता मूर्त और असांकेतिक होती है। और उसका प्रभाव संघातमक होता है।

कॉडवेल कविता में लय को अत्यधिक महत्त्व देते थे। उनका कहना था कि कविता में रागात्मक प्रभाव, लय, तुक और छंद से पैदा होता है। यही तत्व चारों ओर की वास्तविकता से संबंध विच्छेद कर पाठक को काव्य-जगत में लीन करते हैं। उन्होंने ताल, तुक, छंद में बंधी कविता के अनुवाद को संभव नहीं माना, जबकि कथा-साहित्य के अनुवाद की संभावना को उन्होंने स्वीकार किया है।

निष्कर्ष रूप में, कॉडवेल का बल जितना कविता की मूर्तता और सामाजिकता पर था उतना राजनीति की दासता पर नहीं। उन्होंने कविता को सामाजिक व्यवहार के उपकरण के रूप में देखा, राजनीतिक दृष्टिकोण के प्रचार-माध्यम के रूप में नहीं।

साहित्य के मार्क्सवादी विचारकों को स्पष्ट रूप से दो वर्गों में रखा जा सकता है। एक वर्ग उन लोगों का है जिनका प्रधान कार्यक्षेत्र राजनीति है। साहित्य को उन्होंने राजनीतिक जीवन के संदर्भ में रखकर उसकी सापेक्ष व्याख्या की और साहित्यिक क्रियाकलापों को राजनीतिक आर्थिक संरचना द्वारा नियमित-संचालित माना। दूसरे वर्ग में वे विचारक आते हैं जिन्होंने साहित्य में व्यक्ति तत्व, सांकेतिकता, अमूर्तता आदि का निषेध करते हुए उसके सामाजिक और संघातमक चरित्र पर बल दिया। किन्तु सामाजिक व्यवहार को उन्होंने राजनीतिक व्यवहार के पर्याय के रूप में या अभिन्न रूप में परिसीमित नहीं किया।

Scanned by CamScanner

मार्क्सवादी आलोचना का ऐतिहासिक महत्त्व इस बात में है कि उसके द्वारा "कला कला के लिए" सिद्धान्त का विरोध और उन्मूलन हुआ। जीवन-निरपेक्ष कला-दृष्टि के स्थान पर इस आलोचना-पद्धति में साहित्य के प्रति उपयोगितावादी दृष्टि का विकास किया गया। कला, जीवन और समाज के बीच घनिष्ठ और स्वस्थ संबंध-भावना पहली बार इतने आग्रहपूर्वक सामने आयी। यही इस आलोचना-पद्धति की सबसे बड़ी शक्ति थी।

सामाजिक सरोकार और उपयोगितावाद पर अतिरिक्त बल देने के कारण समय के साथ व्यक्ति का महत्त्व क्रमशः गौण और कभी-कभी पूरी तरह उपेक्षित होने की संभावना बढ़ने लगी। आर्थिक तंत्र और सामाजिक ढांचे की सापेक्षता में रचनाकार की मानसिकता के प्रभावित होने की बात को तो बहुत दूर तक स्वीकार किया गया किन्तु कलाओं को राजनीति के अधीन या उस पर पूर्णतः निर्भर मानने का प्रस्ताव एक सीमा के आगे स्वीकार्य न हो सका। इस प्रवृत्ति ने जब भी दुराग्रह का रूप लिया तभी कलात्मक मूल्यों की अवमानना होती दिखायी पड़ी और ऐसा प्रायः कलाकृतियों पर कला के निजी क्षेत्र से इतर मूल्यों के आरोप के द्वारा किया गया।

यही कारण है कि बीसवीं शताब्दी की आलोचना में जहां रोमांटिक दृष्टिकोण के व्यक्तिकेन्द्रित प्रतिमानों के आधार पर साहित्यालोचन का विरोध हुआ वहीं मार्क्सवादी दृष्टिकोण के आग्रह से साहित्य के साथ दस्तावेज़ का सा सलूक करने का भी उतना ही तीव्र विरोध किया गया। केन्द्रीय आलोचना-पद्धति के रूप में बीसवीं शताब्दी में मार्क्सवादी आलोचना के अवसान का यही प्रमुख कारण है।

Scanned by CamScanner